अप्रकाशित प्राकृत शतकत्रय—एक परिचय

डॉ० प्रेम सुमन जैन

श्री ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, उज्जैन के ग्रन्थ भण्डार का जुलाई, १९८४ में अवलोकन करते समय प्राकृत भाषा में रचित शतकत्रय की एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई। यह पाण्डुलिपि वि० सं० १९८१ में आश्विन सुदी चतुर्थी, बुधवार को लिखी गयी है। इसमें रचनाकार और रचनाकाल का उल्लेख नहीं है। यह एक संग्रह ग्रन्थ प्रतीत होता है। इसलिए इसमें लेखक या संग्रहकर्ता का नामोल्लेख नहीं है। प्राकृत साहित्य के इतिहास में भी ऐसे किसी लेखक का नाम नहीं मिलता, जिसने शतकत्रय की रचना की हो।

इस पाण्डुलिपि में कुल ३२ पन्ने अर्थात् ६४ पृष्ठ हैं। बड़े अक्षरों में दूर-दूर लिखावट है। एक पृष्ठ में प्राकृत की कुल ७ पंक्तियाँ हैं। लगभग ९ शब्द एक पंक्ति में हैं। पन्ने लगभग ११ इंच लम्बे एवं ८ इंच चौड़े हैं।

इस प्राकृत शतकत्रय में प्रथम इन्द्रियशतक, द्वितीय वैराग्यशतक एवं तृतीय आदिनाथशतक का वर्णन है। शतकत्रय से भर्तृहरि के शतकत्रय का स्मरण होता है, जिसमें नीति, वैराग्य और शृंगार शतक सम्मिलित हैं। उनसे इस प्राकृत शतक का कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल नाम-साम्य है। जैन आचार्यों में खरतरगच्छ में जिनभद्रसूरि के शिष्य देहड़सुपुत्र श्री धनदराज संघपाटी ने सं० १४९० में मंडपदुर्ग में एक शतकत्रय की रचना की थी।[1] किन्तु यह शतकत्रय संस्कृत भाषा में है। इसमें भर्तृहरि के अनुसरण पर नीति, वैराग्य एवं शृंगार शतक की ही रचना की गयी है।[2]

प्राकृत शतकत्रय की एक साथ कोई दूसरी पाण्डुलिपि की सूचना अभी तक प्राप्त नहीं है। अतः इसी उज्जैन भण्डार की पाण्डुलिपि के आधार पर इन तीनों शतकों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

१—इंद्रिय शतक

'इन्द्रिय शतक' नामक पाण्डुलिपियाँ कई जैन भण्डारों में उपलब्ध हैं।[3] निम्नांकित ग्रन्थ भण्डारों की प्रतियाँ प्राकृत भाषा की हो सकती हैं—

---

१. वेलेणकर, एच० डी०; जिनरत्नकोश, पृ० ३७०।

२. (क) काव्यमाला के गुच्छ १३ नं० ६९ में निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित।
(ख) नाहटा, अगरचन्द; 'जैन शतक साहित्य' नामक लेख गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ, सागर, १९६७, पृ० १२४-५३८।

३. जिनरत्नकोश, पृ० ४०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, कलेक्शन नं० पांचवा (१८८४-८७) ग्रन्थ नं० ११७० ।

(२) लीबड़ी जैन ग्रन्थ भण्डार, पोथी नं० ५७८ ।

(३) जैनानन्द ग्रन्थ भण्डार, गोपीपुरा, सूरत, पोथी नं० १६४८ ।

भीमसी मानेक, बम्बई द्वारा 'प्रकरणरत्नाकर' के भाग चार में एक 'इन्द्रिय पराजय शतक' प्रकाशित हुआ है। यह पुस्तक देखने को नहीं मिली। हो सकता है इसका और प्राकृत इंद्रियशतक का कोई सम्बन्ध हो। रचनाकार के नाम का उल्लेख कहीं नहीं है। इन्द्रियपराजय शतक पर सं० १६६४ में गुणविनय ने एक टीका भी लिखी है।[1]

प्राकृत इन्द्रियशतक का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

आदि अंश

ऊँ नमः सिद्धेभ्यः ॥
सो च व सूरो सो चेव पंडियो तं पसंसिमो निच्चं ।
इंदिय चोरेहि सया न लुहियं जस्स चरणधणं ॥ १ ॥
इंदिय चवला तुरगो दुग्गइ मग्गाणुधाविणो णिच्चं ।
भाविय भवस्स रूवो रुंभइ जिणवयणरिस्सीहिं ॥ २ ॥
इंदिय धुत्ताणमहो तिलंतुसमित्तंपि दिसु मा पसरो ।
जइ दिण्णो तो नोउं जत्थ खणो वरिस कोडि समो ॥ ३ ॥

अंतिम अंश

दुक्करामे एहि कयं जेहिं समत्थेहि जुवणच्छहि ।
भग्गाइंदियसण्णं धिइपायारं वि लग्गेहिं ॥ ९९ ॥
ते धण्णा ताणं णमो दासोऽहं ताण संजमधाराणं ।
अह अहच्छि पिरीओ जाण ण हियए खुडकंति ॥ १०० ॥
किं बहुणा जइ वच्छसि जीव तुमं सासयं सुहं अरूअं ।
ता पिअसु विसइविमुहो संवेगरसायणं णिच्चं ॥ १०१ ॥

॥ इति श्रीइंद्रियशतक समाप्तं ॥

इस इंद्रिय शतक में कुल १०१ प्राकृत गाथाएँ हैं। इन गाथाओं के ऊपर पुरानी हिन्दी में टिप्पण भी लिखे हुए हैं। इनमें से कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं—

गाथा—१

सोइ सूरमा पुरुष सोइ पुरुष पंडित
ते हवइ प्रसंस्यज्यो नित्यं ।
जेह इंदियरूपिया चोर सदा
तेहने नथी लूटाव्या चरितरूप धनु ॥

---

१. वही, पृ० ४०, कान्तिविजय जी का निजी संग्रह, बड़ौदा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा—२

इंदीरूप चवल तुरंगम दुर्गति मार्ग
नइ धावत उथइ सदा।
स्वभाविउ संसारस्वरूप रुंधइ
श्रीवीतरागना वचन मारगवोरोइ ॥

गाथा—३

इंदिय धूरत नइ अहो उत्तम तिलवाकू कसमात्र देसिमा।
पसरवा जउ दीयउ तउ लीघउ जहाँ एक क्षण वरसनी कोडि सरीखो दुखमय ॥

इस इन्द्रियविजयशतक में कामभोगों के दुष्परिणामों का वर्णन किया गया है। प्रसंगवश नारी को दुःखों की खान कहा गया है। जीवों को इतना मूढ़ और अज्ञानी कहा गया है कि वे विषय-भोगों के जाल में जानते हुए भी फँस जाते हैं। क्योंकि उन्हें अपने स्वरूप का पता नहीं है। जो स्वाभिमानी व्यक्ति मृत्यु के आने पर भी कभी दीन वचन नहीं बोलते हैं, वे भी नारी के प्रेमजाल में फँसकर उसकी चाटुकारिता करते हैं। यथा—

मरणे वि दीणवचणं माणधरा जे णरा ण जंपंति।
ते वि हु कुणंति लल्लिं बालाणं-नेह-गहिल्ला ॥ ६८ ॥

इतिहास का एक उदाहरण देते हुए कवि कहता है कि यादववंश के पुत्र, महान् आत्मा, जिनेन्द्र नेमिनाथ के भाई, महाव्रतधारी, चरमशरीरी रथनेमि भी राजमति से विषयों की आकांक्षा करने लगते हैं। जब उस जैसा मेरुपर्वत सदृश निश्चल यति भी कामरूपी पवन से चंचल हो उठा तब पके हुए पत्तों की तरह सामान्य अन्य जीवों की गति क्या कही जाय—

जउनंदणो महप्पा जिणभाय वयधरो चरमदेहो।
रहणेमि रायमई, रायमई कासिही विसया ॥ ७० ॥
मयणपवणेण जइं तारिसो वि सुरसेलनिच्चला चलिया।
ता पक्कपत्तसत्ता णइय सत्ताण का वत्ता ॥ ७१ ॥

इसीलिए विषय-कामभोगों से मन को विरक्त कर जिनभाव में अभ्यास करना चाहिये। ऐसे संयमधारी योगियों का दास बनना भी श्रेयस्कर है।

२—वैराग्य शतक

नीति और अध्यात्म विषयक प्राकृत रचनाओं में वैराग्य शतक नामक रचना बहुत प्रचलित रही है। यद्यपि इसका कर्ता अभी तक अज्ञात है। इसका दूसरा नाम 'भव-वैराग्यशतक' भी प्राप्त होता है। यह रचना संस्कृतवृति एवं गुजराती अनुवाद सहित ३-४ बार प्रकाशित हो चुकी है।[1]

---

१. (क) कचरभाई गोपालदास, अहमदाबाद, सन् १८९५।
(ख) हीरालाल हंसराज जामनगर, १९१४।
(ग) देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला, १९४१।
(घ) स्याद्वाद संस्कृत पाठशाला, खंभात, १९४८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर भी इसके प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित करने की आवश्यकता है। उसके लिये विभिन्न पाण्डुलिपियों का मिलान करना होगा। उज्जैन के सरस्वती भवन से प्राप्त पाण्डुलिपि के नमूने के रूप में इस रचना के आदि एवं अन्त की कुछ गाथाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं।

आदि अंश

संसारंमि असारे नत्थि सुहं वाहि वेयणा पवरे।
जाणंतो इह जीवो ण कुणई जिण देसियं धम्मं ॥ १ ॥
अज्जं कल्लं पुरपुण्णं जीवा चिंतंति अत्थि संपत्ते।
अंजलि-गहियम्मि तोयं गलंतिमाउं ण पिच्छंति ॥ २ ॥
जं कल्लेण कयव्वं तं अज्जं चिय करेह तुरमाणं।
बहु-विग्घोहमुहुत्तो मा अवरण्हं प्पडिवखेहिं ॥ ३ ॥

अंतिम अंश

चउगइणंत दुहाणल पलित्त भवकाणणे महाभीमे।
सेवसु रे जीव! तुमं जिणवयणं अमियकुंडसम्मं ॥ १०४ ॥
विसमे भवमरूदेसे अणंतदुह गिम्हताव संतत्ते।
जिणधम्मं कप्परूक्खं सरिस तुमं जीव सिवसुहयं ॥ १०५ ॥
किं बहुणा तहधम्मो जइअव्व जह भवोदहिं घोरं।
लहु तरिउमणंत सुहं लहइ जियउ सासयं ठाण ॥ १०६ ॥

इति वैराग्यशतकं सम्पूर्णम् ॥ द्वितीयम् ॥

इस वैराग्यशतक में संसार से वैराग्य उत्पन्न करने के लिये शरीर, यौवन और धन की अस्थिरता का वर्णन किया गया है। संसार की क्षणभंगुरता के दृश्य उपस्थित किये गये हैं। संसार के सभी सुखों को कमलपत्ते पर पड़ी हुई जल की बूँद की तरह चंचल कहा गया है। इस शतक में काव्यात्मक बिम्बों का अधिक प्रयोग किया गया है। व्यक्ति के अकेलेपन का चित्रण करते हुए कहा गया है कि माता-पिता, भाई आदि परिवार के लोग मृत्यु से प्राणी को उसी प्रकार नहीं बचा सकते हैं जिस प्रकार सिंह के द्वारा पकड़ लिये जाने पर मृग को कोई नहीं बचा सकता। यथा—

जहेह सीहो व मियं गहाय मच्चू नरं णेइ हु अंतकाले।
ण तस्स माया व पिया न भाया कालंमि तंमि सहरा भवंति ॥

इसलिये चिन्तामणि के समान धर्मरत्न को प्राप्त कर संसारबन्धन से छूटने का प्रयत्न करना चाहिये[1]।

आदिनाथ शतक

'आदिनाथ देशनाशतक' नामक प्राकृत रचना का उल्लेख मिलता है[2]। किन्तु आदिनाथ-शतक नामक किसी अन्य रचना अथवा पाण्डुलिपि की जानकारी नहीं है। उज्जैन के ग्रन्थ भण्डार से

१. शास्त्री, नेमिचन्द्र; प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३८७।
२. जैन ग्रन्थावलि, पृ० २०८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त प्राकृत का यह आदिनाथशतक नया हो सकता है। इस आदिनाथशतक की प्राकृत गाथाओं के ऊपर हिन्दी टिप्पण भी नहीं दिये गये हैं। इसका नाम आदिनाथशतक क्यों दिया गया है, यह पाण्डुलिपि को पढ़ने से ज्ञात नहीं होता। क्योंकि इसमें आदिनाथ के जीवन की कोई घटना नहीं है। जैन धर्म का प्रवर्तक होने के नाते आदिनाथ का नाम शायद इसलिये दिया गया है कि इस शतक में जो कहा गया है वह भी जैन-धर्म का मूल उपदेश ही है।

इस शतक में मनुष्य जन्म की दुर्लभता, कर्मों की प्रबलता एवं संसार की विचित्रता का वर्णन है। अशरण भावना को जानकर शीघ्र धर्म करने की बात इसमें कही गयी है—

असरण मरंति इंदा-बलदेव-वासुदेव-चक्कहरा।
ता एअं नाऊणं करेहि धम्मु तुरियं ॥ २१ ॥

मनुष्य जन्म प्राप्त कर लेने पर भी धर्मबोधि का लाभ सभी को नहीं हो पाता है। कवि कहता है कि ७२ कलाओं में निपुण व्यक्ति भी स्वर्ण और रत्न को तो कसौटी में कसकर पहचान लेगा, किन्तु धर्म को कसौटी में कसने में वह व्यक्ति भी चूक जाता है। यथा—

बावत्तरिकला कुसला कसणाए कणयरयणाए।
चुक्कंति धम्मकसणा तेसिं वि धम्मुत्तिदुन्नेउ ॥ ७७ ॥

कवि की मान्यता है कि धर्म से ही व्यक्ति, ९ निधियों का स्वामी, १४ रत्नों का अधिपति एवं भारत के छह खण्डों का स्वामी चक्रवर्ती राजा होता है। सामान्य उपलब्धियों का कहना ही क्या? इस ग्रन्थ की कुछ गाथाओं के परिचय के लिये आदि एवं अन्त की गाथाएँ यहाँ दी जा रही हैं।

अथ श्री आदिनाथ जी शतकमारंभः

आदि अंश

संसारे नत्थि सुहं जम्म-जरामरणरोग-सोगेहिं।
तह बिहु मिच्छंध जीवा ण कुणंति जिणंदवरधम्मं ॥ १ ॥
माइं जाल सरिसं विज्जाचमक्कारसच्छहं सव्वं।
सामण्णं खण-दिट्ठं खणणट्ठं कापडिवच्छो ॥ २ ॥
को कस्स इच्छ सयणे को व परो भवसमुद्द-भवणम्मि।
मच्छुव्व भमंति जीआ मिलंति पुण जंपि दूरं ॥ ३ ॥

अंतिम अंश

आरोगरूव-धण-सयण-संपया दीहमाउसोहग्ग।
सग्गापवग्गगमं णं होइ विण्णेण धम्मेणं ॥ ८३ ॥
जत्थ न जरा ण मच्चू वाहि ण न च सव्वदुक्खाई।
सय सुक्खंमि वि जीवो वसइ तहिं सव्व-कालंमि ॥ ८४ ॥
अरयव्व तुंबलग्गाणो भमंति संसार-कंतारे सम्मतजीवा।
णरय तिरिआ नहुंति कयावि सुहमाणुसदेवेहि उपज्जिता सिवं जंति ॥ ८५ ॥

॥ इति शतक त्रिकं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति श्री आदिनाथ स्वामी शतक सम्पूर्णम्। शुभमिति आश्वन शुक्ल चतुर्थी बुधवासरेष् विक्रमीयाब्द १९८१।

इस तरह अज्ञात कवि द्वारा प्राकृत में रचित यह शतकत्रय नीति, धर्म, एवं वैराग्य विषय की एक महत्वपूर्ण रचना है। विभिन्न पाण्डुलिपियों के अध्ययन से इसका प्रामाणिक संस्करण तैयार करने की जरूरत है। हिन्दी अनुवाद के साथ यदि यह प्रकाशित किया जाय तो स्वाध्याय के लिये यह उपयोगी ग्रन्थ होगा। भर्तृहरि के शतकत्रय की भाँति विद्वत्-जगत् इस प्राकृत शतकत्रय से भी परिचित हो सकेंगे[1]।

अध्यक्ष, जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग,
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर।
—२१, सुन्दरवास
उदयपुर (राज०)

---

१. इस शतकत्रय की पाण्डुलिपि की प्राप्ति हेतु पं० दयाचन्द्र जी शास्त्री, व्यवस्थापक, ऐ० पन्नालाल सरस्वती भवन, उज्जैन के प्रति आभार।

★ इस लेख में उल्लिखित इन्द्रिय (पराजय) शतक और वैराग्यशतक प्रकाशित है और उनकी आदि अन्त की गाथाएँ समान हैं।—सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org